नारीवादी चिंतन और उत्तर आधुनिकतावाद

डॉ0 रमा पाण्डेय*

नारीवादी चिंतन को लेकर मार्क्सवाद से लेकर उत्तर आधुनिकतावाद तक हमें बहुत सारी अंतदृष्टिया प्राप्त होती है। नारीवादी परिप्रेक्ष्य की सही शुरूआत फ्रेंच लेखिका सीमोन द बोउवार की महत्वपूर्ण पुस्तक द सैंकड सैक्स स्त्री उपेक्षिता और बैटी फरीडन की 1963 में प्रकाशित पुस्तक फैमिनिन मिसटीक से होती है। एंगेल्स परिवार निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति पुस्तक में इस दिशा में गंभीरता से अनेकों प्रश्न रखते है जिनसे असहमत होती हुई सीमोन 'सैंकड सैक्स में नारीवादी चिंतन पर एक नयी दृष्टि प्रदान करती है। सीमोन बहुत स्पष्ट शब्दों में कहती है– ''नारीत्व के ऊपर बहुत स्याही उडेली जा चुकी है कि अब तक जो कुछ कहा गया है, क्या वह वास्तव में सही समस्या की सही समझ के लिए पर्याप्त है? क्या औरत वास्तव में केवल औरत है? निश्चय ही शाश्वत नारी के सिद्धांत के पक्षधर अब भी उसके कानों में फुसफुसाकर कहेंगे 'समाजवादी रूप में भी तो औरत औरत ही है। बहश्रुत पंडित जन ठंडी सांस भरकर कहेंगे 'औरत भटक गई है। औरत औरत नहीं रही'। हम सोचने लगते है कि क्या यह सब सच है? आधुनिक और यदि परम्परागत औरत नहीं रही, तो क्या हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि आज की दुनिया में औरत का सही स्थान और सही रूप वस्तुतः क्या है? वस्तुत : उसका कौन सा दर्जा होना चाहिए।'' सीमोन द बोउवार, बैटी फरीडन, केटी मिल्ट, जूलिया क्रिस्तिविआ, इरी गैरो आदि नारीवादी लेखिकाओं ने नारीवादी विमर्श पर बिल्कुल नए परिप्रेक्ष्य से विचार किया है। इन नारीवादी लेखिकाओं का मानना है कि आज तक इनसे पूर्व नारीवाद पर जितनी स्याही उंडेली गई है, उसमें पितृसत्तात्मक राजनीति निहित है। यह राजनीति पितृक है जो सैंकडो वर्षो से नारी का दमन करती आई जिसका एक मात्र लक्ष्य है एक वर्ग का दुसरे वर्ग पर अपना प्रभुत्व जमाना नारी पर आज बहुत कुछ लिखा जा रहा है, लेकिन देखने वाली महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इस लेखन में नारी की स्थिति क्या है? क्या उस लेखन से नारी मुक्ति के आन्दोलन का आधार तैयार होता है? नारीवादी लेखिकाओं का तो यहाँ तक स्वीकारना है कि पुरूष की कलम को गहरे संदेह से देखना चाहिए उसके प्रत्येक शब्द को परखने की जरूरत है। इस नारीवादी विमर्श ने पितृसत्तात्मक राजनीति को पहचानते हुए विचार किया है जिससे यह सिद्ध होता है कि औरत के बारे में पुरूष की दृष्टि साहित्यिक और समीक्षात्मक पितृक राजनीति से प्रेरित रही है। नारीवादी चिंतकों का विचारना है कि क्योंकि औरत 'अन्या' है। इसलिए पुरूष की अन्तर्दृष्टियों, मान्यताओं, धारणाओं पर संदेह करना और भी जरूरी बन जाता है। स्त्री विमर्श के सम्बन्ध में एक लेखिका का कहना है कि '' अब तक औरत के बारे में पुरूष ने जो कुछ लिखा कहा है उस पर तनिक संदेह शक किया जाना चाहिए क्योंकि लिखने वाला न्यायधीश और अपराधी दोनों है।'' सीमोंन ने बिल्कुल सही और सार्थक प्रश्न उठाया है कि आज तक पुरूष ने नारी के बारे में जो कुछ भी कहा लिखा है उसे गहरी संदेह की दृष्टि से परखा जाना जरुरी है। क्योंकि वह उत्पीड़ित के बारे में उत्पीड़क की दृष्टि है। उत्पीड़क (पुरूष) उत्पीड़ित (नारी) के बारे में जो कुछ भी लिखेगा उसमें वह अपने उत्पीड़नकारी, दमनकारी चरित्र को छिपाने के लिए तथा उत्पीड़ित की स्थिति रखने के उद्देश्य से ही लिखेगा। वह अपने वर्ग चरित्र उत्पीड़क को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से विचारेगा। वह एक साथ अपराधी भी है और नयायधीश भी। अपराधी इसलिए है, क्योंकि उसने उसे अन्या, सैकड सैक्स बनाकर इतिहास में एक भयानक अपराध किया है और अपने अपराध को छिपाने के लिए वह न्यायधीश भी बना हुआ है। तभी सीमोन ने यह प्रश्न उठाया था कि विधायकों, दार्शनिकों, पुरोहितों, लेखकों, कालाकारों, कानूनविदों, चिंतकों–आलोचकों ने जो नारी विमर्श दिया है उस पर संदेह करने और उसमें निहित अंतर्विरोधों का विश्लेषण करने की जरूरत है। उसमें पितृसत्तात्मक राजनीति काम करती है। जिसका एक मात्र उद्देश्य यह रहा है कि नारी की चेतना को अनुकूलित किया जाये। हजारों वर्षों के इतिहास में नारी सम्बन्धी जो चिंतन प्राप्त होता है वह पर्याप्त है नारी की सामाजिक, सांस्कृतिक स्थिति को समझने के लिए जिसमें पुरूष ने उसे भद्दी से भद्दी गाली देकर उसकों अपमानित, अवमूल्यित किया है। माया, महाठगिनी, इसीलिए कहा गया कि कहीं पुरूष की उसके प्रति समानता, संवेदनशीलता की भावना पैदा

* एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, श्री अग्रसेन कन्या पी0जी0 कालेज, वाराणसी

न हो सके, और वह हमेशा हमेशा के लिए 'अन्या' उपेक्षिता बनी रहे। आदिकालीन ग्रंथों से लेकर आधुनिक काल तक नारी के प्रति पुरूष का दृष्टकोण उसे 'उपेक्षिता' बनाए रखने का ही भयानक षड्यंत्र रहा है। आखिर नारी के प्रति इतना अधिक संवेदनहीन, भावहीन, अनैतिक दृष्टिकोण क्या दर्शता है? वास्तविक अर्थो में उसे कितना सम्मान, बराबरी का अधिकार मिला? यह अधिकार भी उसने किससे लेना था? पुरूषों ने इतिहास में मातृसत्तात्मक समाज को पराजित कर उसके सारे स्वतंत्रता के अधिकार छीन लिए और सारे दायित्वों का बोझ कर्तव्यों के पालन के लिए उस पर फेंक दिया। अब उसका काम था अपने पुरूष समाज द्वारा प्रदत्त उन दायित्वों कर्तव्यों को निभाना तथा उसे केवल उतने सीमित अधिकारों को भोगना जो पुरूष ने उसे दया दृष्टि से दिए थे। यही शासक वर्ग की विचारधारा होती है जो हमें कत्त2व्यों की याद तो कराती रहती है, लेकिन अधिकारों की बात से उसे तकलीफ होने लगती है। औरत को या तो इतना पूज्यनीय देवी बनाा दिया गया था फिर उपेक्षिता, उसे मानवीय रहने ही नहीं दिया गया। जिस राष्ट्र के धर्म ग्रंथों में, साहित्यिक रचनाओं, अन्य कलाओं में (मूर्ति कला, चित्रकला में) नारी की स्थिति इतनी उत्पीड़ित, अन्या हो उस राष्ट्र के समाज में नारी की वास्तविक स्थिति कितनी दरिद्र होगी, इसकी कल्पना रोंगटे खड़े कर देती है। पितृसत्तात्मक समाज में नारी केवल एक वस्तु, उसकी सम्पत्ति ही रही है। वह एक निर्जीव वस्तु से अधिक नहीं रही। इसीलिए स्त्री मास्तिष्कों ने पुरूषों के चिंतन को गलत, अप्रासंगिक ठहराया।

सीमोन द बोउवार का विश्लेषण यही सिद्ध करता है कि पुरूष ने स्त्री का विश्लेषण अपने पितृक दृष्टिकोण से ही कियाहै, इसीलिए उसे रद्द करने की जरूरत है। इस तरह से पुरूष ने उसे 'सैंकड सैक्स, में ही सीमित किया हैं। सीमोन का मानना है कि– ''मानवता का स्वरूप ही पुरूष है और पुरूष औरत को औरत के लिए नही परिभाषित करता, बल्कि पुरूष से सम्बन्धित ही परिभाषित करता हैं। वह औरत को स्वायत्त व्यक्ति नहीं मानता। यहां तक कहा जाता है कि औरत अपने बारे में सोच नहीं सकती और वही बनी रह सकती है जो पुरूष उसे आदेश देता है। इसका अर्थ यह है कि वह अनिवार्यतः पुरूष के लिए भोग की वस्तु है। वह पुरूष के संदर्भ में ही परिभाषित और विभेदित की जाती है। वह आनुषंगिक है अनिवार्य के बदले गौण है। पुरूष आत्म है, विषयी है। वहपूर्ण है, जबकि औरत अन्या है। ''पुरूष ने औरत को केवल अपने संदर्भ में परिभाषित किया है। केटी मिल्ट, बैटी फरीडन, जूलिया क्रिस्तिविया, जूडिथ बटलर, शोजाना फिल्मैन, डेल स्पैडर आदि स्त्री लेखिकाओं ने ऐसे प्रश्न उठाये जो पुरूष केंद्रित सत्ता के वर्चस्व को चुतौती देते है। इसे पितृसत्तात्मक राजनीति के सदर्भ में देखा गया जहां पुरूषों ने विश्व में उसके रचनात्मक, बौद्धिक हस्तक्षेप को रोकते हुए उसे घर की चार दीवारी में बंद कर दिया। केटी मिल्ट ने इस संदर्भ में पितृसत्तत्मक समाज का विश्लेषण करते हुए स्पष्ट किया कि किस प्रकार पितृक राजनीति ने औरत को अन्या बनाया– ''हमारा समाज सभी ऐतिहासिक सभ्यताओं की तरह पैतृक है। तथ्य इसका प्रमाण है कि सेना, उद्यौगिकी, में समाज के सभी क्षेत्रों में ताकत हमेशा ही पुरूषों के हाथों में रही है।''[3] इस तरह से समाज के सभी क्षेत्रों में जहां पुरूषों का वर्चस्व है, वहाँ आज औरत की उपस्थिति कितनी है और कैसी? पुरूष औरत की उपस्थिति हस्तक्षेप को कभी भी सहन नहीं करता, लेकिन जहां भी कहीं औरत ने अपनी बौद्धिक, रचनात्क ताकत के साथ पुरूष को चुनौती देकर अपनी सक्रियता, प्रतिभा को प्रमाणित किया है वहा पुरूष संसार में एक खलबली, हलचल, बेचैनी बढ़ी है। ये औरतें अब घर के चूल्हे चौके से निकल कर इधर भी आ गई! अब समाज बर्बाद हो जायेगा! ये है पुरूष संसार की प्रतिक्रियाएं। पुरूष हमेशा ही औरत की रचनात्मक, बौद्धिक, कलात्मक ताकत से घबराता रहा है। इसीलिए जहां भी उसकी ताकत चली उसने नारी के प्रवेश को रोका। यदि वह प्रवेश को नहीं रोक सका वहां उसने उसकी सक्रियता को कम करने की कोशिश की, ताकि वह हाशिए पर ही पुरूष के केन्द्रवाद, वर्चस्ववाद को चुनौती देने लगी है। अभी भी उसे भयानक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा हैं जहां भी औरत की उपस्थिति है, उसकी ताकत बढ़ रही है, वहां पुरूषों के संसार में चिंता, वेचैनी बढ़ने लगी है। इस बदलाव को भी नकारा नहीं जा सकता। इतिहास की घटनाएं यही सिद्ध करती है कि औरत को अपना विकास करने के लिए कभी भी अनुकूल स्थितियां नहीं मिली। स्थितिया हमेश ही उसकी चेतना के विकास को रोकने के लिए प्रतिरोधक ही रही है। यह अच्छी बात है कि वह उन विपरीत स्थितियों में भी अपने अस्तित्व, अस्मिता को सिद्ध कर सकी। जान स्टुअर्ट मिल, स्टेनढाल ने भी खुले शब्दों मे स्वीकारा है कि नारी को कभी भी ऐसी सुविधाएं नहीं मिली

जिससे वे अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट कर पातीं– ''इस दुनिया में आज हम एक संक्रमण के दौर में से गुजर रहे है। इस दुनियां में आज भी सारी सत्ता, सारे मूल्य और संस्थाएं पुरूषों के हाथों में है। यदि स्त्रियों को कुछ अधिकार दिए भी गए है तो वे अमूर्त्त रह गये है। वे रूढ़ियों, पूर्वाग्रहों के कारण व्यवहारिक जगत में लागू नहीं किए जा सकते। इसलिए अब भी स्त्री की पुरी पकड़ दुनियां पर नहीं है। कहने को स्त्री पुरूष समान है, किंतु वास्तव में इन दोनों में बहुत बड़ा भेद कायम है।''[4] सीमोन ने केटी मिलट, जान स्टुअर्ट मिल की तरह बहुत ही सार्थक प्रश्न उठाया है कि स्त्री अन्या कैसे बनी? क्या उसे पुरूष ने प्रगति के समान अवसर प्रदान किए जिससे वह स्वयं को, अपनी प्रतिभा शक्ति को प्रमाणित कर पातीं? वस्तुस्थिति तो यह है कि आज भी समाज के प्रत्येक क्षेत्र में, सर्वोच्च संस्थाओं में पुरूषों का वर्चस्व है। स्त्रियों की उपस्थिति आज भी पुरूषों को बेहद खलती है। पुरूष उनकी उपस्थिति, प्रतिभा, विवेक, कला चेतना को सहन नहीं कर पाते, क्योंकि उनकी निगाहों में उसका स्थान घर के चूल्हे चौके, ड्राईंग रूम, बैड रूम के बाहर होना ही नहीं चाहिए। इसीलिए पुरूष संसार बौखलाया हुआ है। कानून और संसद की घोषणाएं यदि स्त्री को समानता का दर्जा दे भी दें तो क्या समाज में उसे समानता मिल सकी है? कानून की धाराओं और समाज के मूल्यों में जो भयंकर दरारें है, क्या उन्हें दूर किए बिना स्त्री के लिए कोई सही सार्थक जगह बचती है? इसीलिए लेखन के स्तर पर भी यह अंतर्विरोध बना हुआ है। ज्योर्ज्वी ओ कीथ ने मैबेल लुहान को एक पत्र में लिखा था कि– ''मै समझती हूँ कि तुम मेरे बारे में लिख सकती हो, ऐसा मर्द नहीं लिख सकते। मुझे लगता है कि औरत के बारे में बहुत कुछ ऐसा अनुद्घटित रहा है और जो एक औरत ही उद्घाटित कर सकती है।'' इस वाक्य में जो चिंता छिपी हुई है वह इसी सच्चाई को उद्घाटित कर रही है कि औरत अपने बारे में अधिक प्रामाणिकता से लिख सकती हैं ऐसे जीवंत अनुभव पुरूष के पास नारी के बारे में कहाँ है? इसीलिए स्त्री विमर्श में से प्रश्न उठा था 'ऐसे जो मर्द, उनके बारे में नहीं लिख सकते है। क्यों? वास्तविकता यह है कि जब से स्त्री विमर्श में स्त्रियां सक्रिय हुई है (सीमोन केटी मिल्ट, वैटी फरीडन, जूडिथ बठलर, जूलिया क्रिस्तिविया, तसलीमा, गायत्री, चक्रवती स्विपवाक.....) उनके चिंतन ने पुरूषों के स्त्री विश्लेषण को अप्रासंगिक ठहराया है। उसमें पितृसत्तत्मक राजनीति की छाप को स्पष्ट किया है। स्त्री विमर्श का केंद्रीय मुद्दा ही यही है कि आज तक पुरुष ने नारी के बारे में जो कुछ भी लिखा है उस पर संदेह करों। प्रश्न उठता है कि क्या सारा का सारा काम पुरूषों द्वारा किया गया काम असंगत, पितृक राजनीति से प्रेरित है? ऐसा कहना कुछ तर्क संगत इसलिए भी नहीं है क्योंकि उस काम की प्रामाणिकता– अप्रमाणिकता, छद्मता–वास्तविकता का निर्णय केवल काम के आधार पर ही किया जाना चाहिए कि कौन सा काम पितृक राजनीति से प्रेरित है, कौन सा काम स्त्री विमर्श के पक्ष में जा रहा है और कोन सा काम विरोध में? इसका मूल्यांकन किया जाना जरुरी है। विश्लेषण के बाद जहाँ ऐसा प्रतीत हो कि पुरुष की कलम स्त्री हितों के विरोध में जा रही है, उसके साथ न्याय नहीं कर पा रही, पाखंड कर रही है, उसकी कड़ी आलोचना करने का पूरा अधिकार सभी को है। स्त्री विमर्श में ऐसे आपत्तिजनक प्रश्न, इसलिए भी उठ खड़े हुए, क्योंकि पुरुषों ने अनेकों अंतर्विरोध खड़े किए। उनके अंतिर्विरोध पितृक मानसिकता के ही प्रतिबिम्ब थे। पुरुष की कलम ने इतने अंतर्विरोधों को जन्म दिया जिससे विश्व चिंतन में स्त्री लेखिकाओं ने एक नये विमर्श को जन्म दिया। यह विमर्श पुरूष सत्ता के विरोध, प्रतिरोध में से उपजा था। छेल स्पैंडर की बहुत ही महत्वपूर्ण पुस्तक 'मैन मेड लैगुंएज 1980' में प्रकाशित हुई थी जिसमें उन्होंने सिद्ध किया कि अंग्रेजी भाषा शाब्दिक अर्थो में पुरुष रचित है और मुख्य तौर पर पुरुष अनुशासन अधीन है।'' भाषा के ऊपर इसी एकाधिकार ने पुरुषों ने अपनी प्रमुखता निश्चित बनाई।''[5] डेल स्पैंडर ने इस दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण तथ्यों, अंतर्विरोधों की ओर संकेत किया कि किस प्रकार अंग्रेजी भाषा का पूरा काल पुरूष रचित है। उसमें पितृक राजनीति के अंतर्विरोध मौजूद है। प्रश्न उठता है कि क्या यही स्थित हिंदी भाषा, व्याकरण, साहित्य आलोचना, वृतांतो की नहीं है? लिंग भेद, शब्द और विलोम शब्दों में जो लिंग भेदक ज्ञान पाठकों को विरासत में प्राप्त होता है वह क्या पुलिल्गी भाषा में जकड़ा हुआ हैं? अब यह प्रश्न अंग्रेजी भाषा पर नहीं, अपितु विश्व की सभी सभ्यताओं, संस्कृतियों, इतिहासों पर लागू होगा, क्योंकि सत्ता पुरुषों के हाथों में रही हैं इसीलिए 'मेड लैगुएज' का प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण है।

इसीलिए आज स्त्री विमर्श में इस मुद्दे को लेकर गंभीर बहस छिड़ी हुई है कि क्या स्त्रियां, लेखिकाएं इस भाषाई भेद को तोड़ती हुई अपने अनुभवों को नई भाषा में व्यक्त कर सकेंगी। ? इसी

आधी दुनियां की अपनी नई भाषा क्या होगी ? कहीं ऐसा तो नहीं कि वह पुरूषों की भाषाा को ही आम्यांतरीकृत कर जायेगी ? मर्दो की भाषा को वह कैसे तोड़ सकेंगी ? कहीं वे मर्दो की भाषा को तो आत्मसात् नहीं कर लेंगी? स्त्री विमर्श में स्त्री मस्तिष्कों की पहलकदमी अधिक सार्थक सिद्ध होगी। जाज भी स्त्री विमर्श पर भारत में स्त्रियां कम सक्रिय है, पुरूष अधिक। इसे भी शुभ लक्षण ही कहा जाये, क्योंकि सर्वहारा वर्ग के प्रति समर्पित मार्क्स, एगेल्स, लूकाच, बैंजामिन समृद्ध अमीर परिवारों मे से थे, लेकिन सर्वहारा की मुक्ति के लिए उन्होंने अपना जीवन होम कर दिया।

कुछेक लोगों को यह भ्रम है कि स्त्री विमर्श भारतीय परिस्थितियों में से नहीं उपजा है, इसीलिए वे इसे पश्चिम के नारीवादी आंदोलन की नकल ही मानते हैं यह सही है कि स्त्री विमर्श की शुरूआत 'सीमोन द बाउवार– 'केटी मिल्ट' आदि स्त्री मस्त्रिष्कों की देन है, लेकिन इस भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में जहां भौगोलिक सीमाएं टूट रही है, वहां इस विमर्श को विदेशी विमर्श कहकर खरिज करना क्या वास्तविकता से दूर हटना नहीं है? भ्रमित लोगों के लिए हर नया विमर्श विदेशी, आयातित ही होता हैं। इसीलिए स्त्री विमर्श बारे में भी अभी तक ऐसे भ्रम मौजूद है। प्रभा खेतान का कहना बिल्कुल सही है कि तात्कालिक घटना यदि मनोनुकूल न हो, तो उसकी आलोचना करना, उसके महत्व को कम करके आंकना व्यक्ति मानस की सबसे सहज प्रवृति है लेकिन इसमें अंतिर्निहित जोखित है।'' भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग में इस बीमारी के लक्षण आम है कि वे बिना किसी तर्क, तथ्य, प्रमाण, विश्लेषण के किसी भी महत्वपूर्ण विचार की आलोचना करना, उसे खारिज करना अपना बौद्धिक धर्म समझते हैं वे अकसर नकली चिन्ता करते हुए दिखाई देते हैं प्रश्न उठता है कि क्या नारीवादी स्त्री विमर्श ने पितृसत्तत्मक चरित्र की राजनीति को नहीं पहचाना है? क्या मैन मेड लेगुंएज के घिनौना इतिहास को स्त्री विमर्श ने विश्लेषित नहीं किया है? क्या स्त्री विमर्श स्त्री के लिए एक नये पाठानुभव को नहीं रखता कि स्त्री बलात्कार, दहेज की कहानी को किस परिप्रेक्ष्य से ग्रहण करें, पुरूष अपनी नारी विरोधी दृष्टिकोण के कारण बलात्कार की घटना, कहानी, फिल्म को चटखारे लेकर पढ़ देख सकते है, उससे रस ले सकता है, लेकिन स्त्री विमर्श का विश्लेषण सिद्ध करता है कि उस पाठ का पाठानुभव स्त्री के मानस पर भिन्न प्रभाव छोड़ेगा और वह भिन्न अर्थ ग्रहण करते हुए उसका आलोचनात्क विश्लेषण प्रस्तुत करेगी। पुरूष के लिए तो वह मनोरंजन है, लेकिन स्त्री के लिए वह एक बेहद भयाानक घटना है, जो भय गहरे दुःख अभिशाप, दुर्बलता, असुरक्षा के कारण पैदा होती है। जब स्त्री उसका विश्लेशण करेगी तो वह पुरूष के अमानवीय चरित्र, कुत्सित मानसिकता को सामने रखेगी कि किस प्रकार पुरूष औरत के प्रति हिंसक, असंवेदनशील रहा है। वह स्पष्ट करेगी कि किस प्रकार बलात्कार, मारपीट, छीटांकशी, आत्महत्याएं, दहेज हत्याएं, पुरूष की वर्चस्ववादी शक्ति की देन है। स्त्री विमर्श ने इसी वर्चस्ववादी मानसिकता को उधेड़ा है। मारलों पोन्ती ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक फिनामिनोलॉजी ऑफ प्रसैप्शन में स्पष्ट किया है कि देह एक सिग्निफायर है जिसका सिग्निफाईड एक संस्कृति निश्चित करता है।''[11] सीमोन का दृष्टिकोण एंगेल्स के दृष्टिकोण की आलोचना करता है। एंगेलस ने स्त्री को सर्वहारा कहा? लेकिन सीमोन ने स्पष्ट किया कि उसे सर्वहाश से अलग करके देखना चाहिए, क्योंकि सर्वहाश अपने मालिक पूंजीपति के सर्वनाश का सपना देखता है, उसे समाप्त भी करता है, लेकिन स्त्री अपने साथी पुरूष के साथ ऐसा नहीं कर सकती या अत्यंत पीड़ित नीग्रो अपनी दमित अवस्था में पूरी मानव जाति को काले रंग में रंग देने का साधन की कल्पना कर सकता है, लेकिन औरत पुरूष के खात्में की कल्पना नहीं कर सकती। अतः अपने अत्याचारी और दमनकारी के साथ औरत के रिश्ते की तुलना किन्हीं और के सम्बन्धी के साथ नहीं की जा सकती है। अतः स्त्री पुरूष में भेद की रेखा खींचकर समाज में दरार पैदा नहीं की जा सकती और यहीं पर हम औरत की मौलिक विशेषता पाते हैं सिद्ध होता है कि वह अन्या है। औरत और पुरूष अनिवार्य घटकों के रूप में एक दूसरे के लिए अनिवार्य है।''[12] इस प्रकार सीमोन का विश्लेषण एंगेल्स के विशलेषण से न केवल भिन्न है, विरोधी भी है। एंगेल्स ने नारी को सर्वहारा की श्रेणी में रखा जिसका आधार ठोस मार्क्सवाद है। एंगेल्स के अनुसार चूंकि नारी का शोषण होता हैं, वह उत्पीड़ित घर में पति उसका मालिक होता है, इसलिए एंगेलस ने उसे आर्थिक, सामाजिक धरातल पर सर्वहारा कहा। सीमोन ने तर्क दिया कि औरत को सर्वहारा की श्रेणी में रखना पूर्णतया अनुचित, असंगत इसलिए है, क्योंकि वह सर्वहारा की स्थिति में होते हुए भी सर्वाहारा इसलिए नहीं है, क्योंकि उसके बीच और उसके उत्पीड़क पति के बीच सर्वहारा पुँजीपति जैसा दन्दन नहीं हो सकता। इसी तरह के अनेकों प्रश्नों, तर्को

द्वारा सीमोन ने एंगेल्स के दृष्टिकोण की कड़ी आलोचना की तथा उसे बेहद यांत्रिक भी बताया। सीमोन स्पष्ट कहती है कि–''औरत को औरत होना सिखाया जाता है। औरत बनी रहने के लिए उसे अनुकूल किया जाता हैं एक औरत नहीं हैं यदि वह औरत होना चाहती है तो उसे और तपने की रहस्यमय वास्तविकता से परिचित होना पड़ेगा।''[13] सीमोन एंगेल्स में विक्टोरियन पितृसत्त के अंतर्विरोध देखती हुई एंगेलस की आलोचना करती हैं स्त्री के प्रजनन के कार्य की भी सीमोन ने आलोचना की क्योंकि इसके पीछे छीपी हुई हैं दमन की प्रक्रिया।

हालांकि केट मिल्ट की पुस्तक 'सैक्सुअल पालिटिक्स' इतालवी चिंतक अंतानियों ग्राम्शी की महत्वपूर्ण अवधारणा वर्ग प्रभुत्व पर ही आधारित है जिसे मिल्ट ने लिंग प्रभुत्व में बदलकर देखा है। मिल्ट की लिंग राजनीति की आवधारणा मिशैल फूकों की 'शक्ति तथा ग्राम्शी के 'प्रभुत्व' के काफी करीब लगती हैं। बड़े से बड़ा सेक्युलर मानवतावादी लेखक भी, भले ही वह नारी के प्रति कितना ही आदर्शवादी, श्रद्धावादी दृष्टिकोण क्यों न रखता होता, वह पितृक राजनीति से ग्रसित होता ही हैं। स्त्री विमर्श इन्ही अंतर्विरोधों को सामने लाकर विश्लेषण का एक नया पाठ बनाता है।

स्त्री विमर्श ने पहली बार स्पष्ट किया कि कैसे इन पितृक अंतर्विराधों पर सही ढंग से विचार संभव है। इस नारीवादी विमर्श ने मर्दवादी राजनीति का खुले शब्दों में पर्दाफाश किया। तभी से एक नई आलोचना दृष्टि सामने आई जिसने यह सिद्ध किया कि आज तक की आलोचना एवं उस की भाषा का मुहावरा पितृक रहा है। डेल स्मैंडर की पुस्तक 'मैन मेड लैगुएज' इसी तथ्य की पुष्टि करती है कि अंग्रेजी भाषा शाब्दिक अर्थो में पुरूष रचित है। क्या यह स्थिति हिंदी की नहीं? क्या आलोचना की भाषा, पुल्लिगी भाषा के साथ यही स्थिति नहीं? इस नारीवादी विमर्श को स्वीकरना है कि नारिया इस पितृक राजनीतिक भाषा को तोड़कर अपनी नई भाषा कैसे निर्मित कर? क्या इस मर्द केंद्रित भाषा के वर्चस्व, प्रभुत्व को तोड़ा जा सकेगा? पितृक भाषा के इस प्रभुत्व को चुनौती देना, उसे तोड़ना एवं बदलना स्त्री विमर्श के लिए आज सबसे बड़ी चुनौती है।

औद्योगिकी क्रांति ने औरत को सार्वजनिक उत्पादन के क्षेत्र में स्थान दिलाया तथा उसे आर्थिक शक्ति बनने का आधार प्रदार किया। इससे विरोधी दुनियां पुरूषों की दुनियां में हाहाकर मच गया है। औरत अब उसकी प्रतिद्वंद्वी बन गई। पुरूष की आँखों में चुमने वाली किरकरी। इसी प्रक्रिया में औरत पुरूष के प्रतियोगी बन गई। पुरूषें के लिए एक खतरा और भी हो गया, क्योंकि औरत कम पैसे पर काम करने के लिए तैयार हो गई। इसी प्रक्रिया ने पुरूषों के आर्थिक, समाजिक अस्तित्व को चुनौती दी। एंगेल्स आर्थिक कारणों के समाप्त होने से नारी की स्थिति में परिवर्तन का आधार ढूंढते हुए तर्क देते है–''जब पूंजीपति तथा उससे उत्पन्न स्वामित्व सम्बन्ध मिट जायेंगे और उसके परिणाम स्वरुप वे सब गौण आर्थिक कारण भी जो आज भी जीवन साथी के चुनाव में इतना भारी प्रभाव डालते है, और इस प्रकार जब स्त्रियों ओर पुरूषों में सचमुच समानता स्थापित हो जायेगी इसका परिणाम उतना यह नहीं होगा कि स्त्री बहुपतिका हो जायेगी। बल्कि कही अधिक प्रभावपूर्ण यह होगा कि पुरूष सही माने में एक पत्नीक हो जायेगा।''[14] प्रश्न उठता है कि क्या केवल आर्थिक कारणों के मिट जाने से ही समाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक कारण मिट जाते है? क्या आर्थिक कारण ही मुख्य निर्णायक शक्ति है औरत की स्थिति मं बदलाव लान के लिए? क्या दूसरे सामाजिक कारण, रूढ़ियां, परम्पराएं, पूर्वाग्रह आड़े नहीं आते? क्या औरत का आर्थिक शक्ति बन जाना ही सामाजिक परिवर्तन के लिए निर्णायक तत्व है? क्या वह आर्थिक शक्ति बन कर सामाजिक शक्ति बन सकी है? हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि केवल आर्थिक कारण बदलने से ही स्त्री की स्थिति, चेतना में परिवर्तन आ जायेगा। हालांकि इसके साथ–साथ नैतिक सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन भी जरूरी है, लेकिन इसके साथ साथ जब तक समाज के नैतिक सामाजिक मूल्यों, परम्पराओं में परिवर्तन नहीं आता तब तक आर्थिक तत्व क्या कर सकता है? समूची समाज व्यवस्थ की सोच में परिवर्तन आना अधिक जरूरी है। सत्तादल का कहना सही है कि 'सारे जंगल को एक साथ रोपना होगा। यह नहीं कि पहले एक पेड़ उगे एक बाद में।''[15] आज अनेकों औरते सर्वाजनिक क्षेत्रों में काम करती है, अच्छे पदों पर आसीन है, बड़ी–बड़ी तनख्वाहें पाती है, लेकिन उनकी तनख्वाहें, किनकों सम्पन्न बनाती है? क्या वे स्वतंत्रता पूर्वक आनी अच्छी खुराक, पहरावे, के लिए स्वेच्छा पूर्वक खर्च कर सकती है? पुरूष की जब तक कृपा दृष्टि न हो वे स्वतंत्र निर्णय नहीं ले सकती। सीमोन की बात में काफी बजन है, क्योंकि आर्थिक तत्त्व ही एकमात्र निर्णायक तत्त्व नहीं होता, जैसा

कि बहुतेरे माकर्सवादी विचारकों की धारणा रही हैं। यह दो दूनी चार वाली जड़ माकर्सवादी समझ है जो आज तक प्रचलित है। बाह्य सरंचना में भी तो आर्थिक आधार को प्रभावित करने की, उसे बदलने की ताकत होती है।

जब स्त्रियां संघर्ष करती है, सार्वजिक क्षेत्रों में? कार्यालयों में तमाम प्रतियोगिताओं में पुरुषों को पराजित करती हुई अपनी प्रतिभा को प्रमाणित करती हैं तो पुरूष उसे अपना खतरनाक प्रतियोगी मान लेता है। वह उनकी उपस्थिति को लेकर तीखी प्रतिक्रियाएं देता है। इसीलिए पुरूष नारी के अधिकारो कीबात तो करते है, लेकिन अपने अधिकारों की चिंता उन्हे खूब रहती है। दूसरे शब्दों में वह एक नकली चिंता का शिकार हैं। वह यथास्थिति बनाए रखना चाहता है। स्त्री अधिकारी की लड़ाई खुद उसके अपने लिए चुनौती है। वह उसकी प्रतिमा से बेहद भयभीत है। और आज जब खुली प्रतियोगिता में उसने पुरूषों को पछझाड़ना, उखाड़ना शुरू किया है, पुरूष संसार घबरा गया है। जब वह उनसे पिछड़ने लगा है तो उस पर चरित्रगत दोष लागाने लगा है। उसे प्रतिभाहीन कहने लगा है। अनेकों मर्द यह कहते हुए मिलेगें अजी! इसने अपनी सुदरता से नौकरी ली है! बुद्धि थोड़े है इसके पास! अरे बुद्धि प्रतिभा की इसे जरूरत ही क्या है? इसके पास सुन्दरता है–सुन्दरता! समझे! इससे अपमान जनक तर्क वह दे भी क्या सकता है? एक बौखलाए हुआ पराजित व्यक्ति का खोखला अहं इसी तरह की गालियों से संतुष्टि पाता है। वह हमेशा ही स्वयं को औरत से बेहतर, श्रेष्ठ समझता हैं यह उसका झूठ अहं भाव है। वह दमनकारी है। जब दमन की स्थिति में नहीं होता तो आरोपों की स्थिति में होता है और आरोपों की स्थिति में नहीं होगा तो खामोश हो जायेगा। दोनों ही स्थितियाँ औरत के हक में जायेंगी। स्थिति में बदलाव निश्चित रूप से आयेगा। तब क्या औरत दमनकारी हो जायेगी? नहीं ! दमन दोनों ही धरातलों पर खतरनाक होता है। मानवीय सम्बन्ध इसका आधार है। दोनों में समानता सच्चे समानता और मानवीयता जरूरी है। सीमोन का मानना है कि स्त्री और पुरूष प्राकृतिक भेद को बनाए रखते हुए भी यदि सासमाजिक भेद को मिटा दे, सौहार्द स्थापित कर ले, तभी मानवीय संस्कृति का विकास संभव है।''

प्राकृतिक भेद मिटाया नहीं जा सकता, लेकिन समाजिक, सांस्कृतिक भेद की जो भयानक दरारें है, उन्हे आज मिटाने की सबसे अधिक जरूरत है। क्या पुरुष समाज इस भेद को मिटाने के लिए तत्पर है ? क्या इस समाजिक भेद को मिटाए बिना स्त्री की स्थिति में बदलाव आ सकता है? इस बदलाव के लिए जरूरी है उन पितृसत्तात्मक, समाजिक मूल्यों में आमूल परिवर्तन। आज भी सामंतवाद नारी को कैसी स्वतंत्रता देता है? स्यवं मार्क्सवादियों में सामंतीय चेतनाएँ सक्रिय है। ग्रामीण बीवियों को छोड़ना, नएं–नए सम्बन्ध बनाना महानगरीय बुद्धिजीवियों की आम विशेषता है। अपने ही परिवारिक ढांचों को तोड़कर वे एंगेल्स की परिवार निजी सम्पत्ति पुस्तक का आदर्श रखते है। क्या यही कुछ हमने मार्क्सवाद से ग्रहण किया है? इस समाजिक भेद को हमने पूरी तरह से नहीं मिटाया है! स्त्री विमर्श इसे मिटाये तो मिटाये।

हमारे समाज चूंकि पुरूष प्रधान है, इसलिए उसे उतने ही अधिकार मिलते है, जिससे उसकी अधीन स्थिति बनी रहे। दमनकर्ता का अस्तित्व दमित के अस्तित्व से ही जुड़ा हुआ है। दमित उत्पीड़ित की आजादी दमन प्रक्रिया का ही परिणाम है। ऊपर से श्रद्वावाद का आदर्श औरत भीतर से दमन, अन्याय, उत्पीड़न अपमान। यह है पुरूष का छद्म आदर्शवाद और श्रद्वावाद। सीमोन का कहना सही है कि पुरूष द्वारा निर्मित सिद्धांतों, कानूनो, अनुशासनबद्धता को तोड़ना बेहद जरूरी है। इस नियमों, कानून, सिद्धांतों आदर्शो के पीछे काम करती है। पितृसत्तात्मक राजनीति जिसे आज तोड़ना जरूरी है। यह राजनीति सैंकड़ों वर्षो पुरानी है। भले ही संविधान की धाराएं कानून विद् उसे समानता का दर्जा देते है लेकिन समाजिक वास्तविकता तो कुछ औरही है– ''कानून के पर्दे के पीछे, जहां असली जीवन चलता है, वहां क्या होता है, यह स्वेच्छिक संविदा किस प्रकार सम्पन्न होती है, इससे कानून विदों को कोई गरज नहीं है।''[16] कानून और संविधान की धाराएं औरत के पक्ष में भले ही हो, लेकिन समाज क्या उसके पक्ष में है ? कानून क्या उसकी समाजिक स्थिति को सुधार सका है ? कानून कितना भी उसके पक्ष में क्यों न हो, अदालत के बाहर जो भयानक समाजिक, सांस्कृतिक अदालते, पंचायत, गली मुहल्ले, परिवार है वे उसके साथ कैसा व्यवहार करते है? इसीलिए सीमोन ने सामाजिक भेद को कानून, अदालतें सुरक्षित करा सकी? दहेज हत्याएं, जिंदा जला देने की घटनाएं क्या समाप्त हो सकी? सीमोन ने यह स्पष्ट रूप से दिखाने की चेष्टा की है कि कैसे नारी की नियति भिन्न–भिन्न सामाजिक आर्थिक

मनोवैज्ञानिक कारणों शक्तियों से नियंत्रित, निर्धारित होती है, तथा किस प्रकार नारीत्व की अवधारणा को बनाया गया, क्यों कैसे और कहाँ औरत को 'अन्या' की तरह परिभाषित किया गया तथा इसके मेल में पुरूष का क्या दृष्टिकोण काम करता है? नारी के मातृसत्तात्मक समाज का विश्लेषण करती हुई सीमोन कहती है कि– ''स्वर्ग हो या नर्क, हर जगह स्त्री एक शक्ति बनी। पवित्रता की प्रतीक, क्योंकि उसके पास प्रजनन की जादुई शक्ति थी। उस शक्ति की पूजा की गई। ये प्राचीन युग हमें कोई साहित्य नहीं देते, किंतु महान पितृसत्तात्मक समाज अपने शिलालेखों और कालातीत परम्पराओं में उन स्मृतियां को संजोये हुए है जब स्त्री को समाज में सर्वोपरि स्थान मिला हुआ था। ऋग्वेद के ऋचा गीतों में स्त्री की जो बंदना है, उसमें ह्रास होता है ब्राह्मण युग के साथ। वेदकालीन औरत को जो सत्ता मिली थी, कुरान में उसकी स्थिति हीन बना दी गई। इससे यह तो साबित होता है कि आदिकाल में वास्तव में मातृसत्तात्मक समाज था। एंगेल्स ने कहा भी था कि मातृसत्ता से पतिृसत्तात्मक समाज का आवरण वास्तव में औरत जाति की सबसे बड़ी ऐतिहासिक हार थी। सत्य तो यह कि स्त्री के लिए ऐसा स्वर्ण युग वास्तव में एक मिथक के अलावा और कुछ नहीं है।''[17] मातृसत्तात्मक समाज के बारे में एंगेल्स का मानना है कि मातृ–अधिकार का विनाश नारी जाति की विश्व ऐतिहासिक महत्व की पराजय था। अब घर के अंदर भी पुरूष ने अपना आधिपत्य जमा लिया। नारी पद्च्युत कर दी गई। वह जकड़ दी गई संतान उत्पन्न करने का एक यंत्र मात्र बनकर रह गयी। वह पुरूष का जो एकछत्र सत्ता स्थापित हुई उसका पहला प्रभाव परिवार के एक अंर्तकालीन रूप पितृसत्तात्मक परिवार की शक्ल–में प्रकट हुआ, जिसका उस काल में अविर्भाव हुआ।''[18] इस प्रकार मातृसत्तात्मक समाज में नारी को जो सम्मान, प्रतिष्ठा प्राप्त थी। वह जैसे ही पुरूष ने सम्पत्ति पर कब्जा किया उसने मातृसात्तात्म्क समाज को पराजित कर अपनी प्रभुता को स्थापित कर लिया। सम्पत्ति बढ़ने से परिवार के भीतर पुरूष का प्रभुत्व जमता गया और नारी हाशिए पर चली गई। मातृ अधिकार में गोत्र की मूल उत्तराधिकार प्रथा माँ के परिवार से जुड़ती थी। पुरूष ने यह निर्णय लिया कि अब गोत्र के पुरूष सदस्यों के वंशज गोत्र में ही रहेगे। इस प्रकार मातृक वंशानुक्रम तथा मातृक उत्तराधिकार की प्रथा उलट दी गयी और उसके स्थान पर पैतृक वंशानुक्रम तथा पैतृक उत्तराधिकार स्थापित हुआ। यह क्रांति सम्य जनगण में कब और कैसी हुई, इसके बारे में हम कुछ नहीं जानते है। यह पूर्णतः प्रागैतिहासिक काल की बात है।''[19] इस प्रकार एंगेल्स ने प्रागैतिहासिक काल की चर्चा करते हुए स्पष्ट किया है किस प्रकार मातृसत्तात्मक समाज को समाप्त कर पितृसत्तात्मक समाज शुरू हुआ।

आज के जमाने में नारी की उत्पीड़न की स्थिति को स्पष्ट करती हुई सीमोन कहती है–''आज हम एक संक्रमण के दौर में से गुजर रहे हें इस दुनिया में आज भी सारी सत्ता सारे मूल्य और संस्थायें पुरूषों के हाथों में है। यदि स्त्रियों को कुछ अधिकार दिये भी गये है तो वे अमूर्त रह गये है वे रूढ़ियों और पूर्वाग्रहों के कारण व्यावहारिक जगत में लागू नहीं किये जा सकते इसलिए स्त्री की अब भी पुरी पकड़ दुनियां पर नहीं है। कहने को तो स्त्री और पुरूष समान है, किंतु वास्तव में इन दोनों में बहुंत बड़ा भेद कायम है।''[20] आज भी औरत को दिए जाने वाले अधिकार केवल संविधान की धाराओं, संसद भवन की घोषणाओं के शोरगुल में खोए हुए है। वास्तविक जिंदगी में सारी सत्ता, सम्पत्ति पर अधिकार मूल्यों और संस्थाओं अनुशासनों, नियमों पर पुरूषों का एकाधिकार है। सविधान की धाराएँ भले ही स्त्री के लिए प्रगतिशील से प्रगतिशील–विचारधाराएँ रखती हो, लेकिन वास्तविक जिन्दगी में उनकी कैसे धज्जियाँ उड़ती है, उस पर संविधान, संसद की घोषणाएं, कानूनी–कानूनविद् क्या कहते हे, सभी परिचित है? आज भी औरत और पुरूष के बीच बहुत बड़ा भेद है। सभी परिचित है? उत्पीड़क और उत्पीड़ित का और इस दूरी को मिटाया नहीं जा सका है। स्त्री अब भी पूरी तरह से अधीनस्थ है। वह स्वतंत्र नहीं। सीमोन ने इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बात कही है– स्त्री और पुरूष का यह भेद परिस्थितिजन्य है। ऐसा क्यों कहा जाता है कि औरत में निर्णय की क्षमता का अभाव है ओर वह कवेल भावनात्मक स्तर पर जीती है? यदि इतिहास में बहुत कम स्त्रियां जीनियस हुई है तो इसका कारण उनका स्त्री होना नहीं बल्कि यह समाज है जो उसकी सारी अभिव्यक्ति को नियंत्रित करता रहता है, उसकों प्रत्येक सुविधा से वंचित रखता है। बुद्धिमान से बुद्धिमान स्त्री की भी सार्वजनिक हितों के लिए आहुति दे दी जाती है। यदि उन्हे विकास का पूरा अवसर मिले तो एसा कोई भी काम नहीं जो वे न कर सके। दमनकर्ता हमेशा

दमित की जड़ों को काटता रहता है, ताकि वह बौना ही रह जाये। पुरूष जान बूझकर स्त्री को बौना रखता है। स्त्री न देवी है न राक्षसी, वह मानवी है।''

संदर्भ :

1. सीमोन द बोउवार, स्त्री उपेक्षिता पृ0 28
2. वही पृ0 30
3. K. Millet, Sexual Politics, P. 25.
4. सीमोन पृ0 67
5. Toril Moi, Sexual/Testual Politics, London, New York, Reprinted 1988, p, 156
6. सुधीश पचौरी, दिसम्बर 1994 पृ0 36
7. सुधीश, उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श पृ0 121
8. सीामोन, पृ0 27
9. वही, पृ0 23
10. एंगेलस, परिवार निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति पृ0 100
11. सीमोन, 343
12. सीमोन, पृ0 88
13. सीमोन पृ0 52
14. एंगेल्स, पृ0 69
15. वही, पृ0 68
16. सीमोन, पृ0 67
17. वही, पृ0 109
18. सुधीश पचौरी, उत्तर आधुनिकताबाद और उत्तर संरचनावाद, पृ0 97
19. राकेश कुमार, नारीवादी विमर्श आधार प्रकाशन–2001 पृ0सं0–135, पृ0–152.